अंक 268 वर्ष 56

भाषा

सितंबर–अक्तूबर 2016

अभिनवगुप्त और भारतीय साहित्य विशेषांक



सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : 56 ☐ अंक : 1 (268)
सितंबर–अक्तूबर, 2016

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.hindinideshalaya.nic.in

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

स्वदेश में : एक प्रति	:	₹ 25/–	(डाकखर्च अतिरिक्त : ₹ 11/–)
वार्षिक	:	₹ 125/–	(डाकखर्च अतिरिक्त : ₹ 66/–)
विदेश में : एक प्रति	:	£ 1 अथवा $ 2	(डाकखर्च सहित)
वार्षिक	:	£ 6 अथवा $ 12	(डाकखर्च सहित)

वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689
फैक्स : 011-23817846

4342 CHD/16— 1B

अनुक्रमणिका

संपादकीय

आपने लिखा

आलेख

1.	अभिनवगुप्त तथा भारतीय वाङ्मय को उनका योगदान	डॉ. दयाल सिंह पवार	9
2.	सहस्राब्दि पर आचार्य अभिनवगुप्त	डॉ. उदय प्रताप सिंह	21
3.	अभिनवगुप्त की साहित्यिक निष्पत्ति	आचार्य मिथिलाप्रसाद त्रिपाठी	31
4.	त्रिकशास्त्र के व्याख्याता आचार्य अभिनवगुप्त	डॉ. मोहन लाल सर	46
5.	अभिनवगुप्त और उनका तत्व-चिंतन	प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल	51
6.	अभिनवगुप्त का ध्वनि-चिंतन	डॉ. आशा रानी	59
7.	अभिनवगुप्त का रस-विमर्श	डॉ. सुनीता रानी घोष	75
8.	रस-निष्पत्ति और अभिनवगुप्त	डॉ. अनुशब्द	91
9.	अभिनवगुप्त की दृष्टि में रस एवं शिवतत्व	डॉ. दया शंकर तिवारी	101
10.	अभिनवगुप्त का शास्त्र-लालित्य	डॉ. अजय कुमार मिश्र	108
11.	व्याकरणिक कोटियों का अभिनवकृत दार्शनिक उपयोग	डॉ. बलराम शुक्ल	121
12.	अभिनवगुप्त का शब्द-चिंतन	डॉ. आरती दुबे	135
13.	अभिनवगुप्त की लोचनटीका का अवेक्षण	प्रो. रहसबिहारी द्विवेदी	140
14.	आचार्य अभिनवगुप्त : एक अनुशीलन	डॉ. शुभंकर मिश्र	147
15.	आचार्य अभिनवगुप्त का दार्शनिक-चिंतन	डॉ. दीनानाथ शुक्ल	156

माना जा सकता है और इस संदर्भ में इनका यह चिंतन बड़ा युगीन है। नई पाश्चात्य थ्योरी में 'इंप्लाइड रीडर' तथा इंफॉर्म्ड रीडर' भी भारतीय काव्यशास्त्र के 'सहृदय' की अवधारणा से काफ़ी नैकट्य रखता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के चर्चित मर्मज्ञ एडविन गौरी ने अपनी कृति "Indian Poetics" (Otto Harrassowitz, Wiesbaden) में ध्वनि संबंधी चर्चा को उठाया है, उसे देरीदा के पदबंध - 'अदर', 'प्रेजेन्स', 'ऐब्सेन्स' के मायने में आँके जाने की जरूरत है। आंग्ल पदों की समीक्षा आचार्य अभिनवगुप्त के रसविषयक विभाव आदि प्रक्रिया में की जा सकती है तथा 'अदर' को भारतीय परिप्रेक्ष्य में "अव्यतिरेक तुरीयातीत" माना जा सकता है। अतः टी. एस. इलियट ने अपनी किताब 'ट्रडिशन एंड इंडीमीयूजल टैलेंट' में लिखा है कि किसी भी कलाकार की रचना/कला उसकी मौलिक कृति/थाती नहीं होती। वह अपनी मौलिकता में जाने-अनजाने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों/विद्वानों से अनुप्राणित ही होता है। उसी भाव को अभिनवगुप्त ने लिखा है - "तस्मात् सतामत्र वुशोधितानि/मूल-प्रतिष्ठा-फलमामनन्ति।" अर्थात् इस वजह से मैंने अपने पूर्व आचार्यों के मतों का खंडन नहीं किया है, बल्कि उनका संशोधन किया है। पहले के नामचीन थ्योरी (सिद्धांतों) की सुव्यवस्थित रीति से संगति (तालमेल) बैठा देने में मौलिक सिद्धांतों की स्थापना (प्रणयन) की तरह फल मिलता है। यही कारण है कि आज के पोस्ट-मॉडर्निस्ट विद्वान आलेख/समीक्षा को मौलिक रचना से कमतर नहीं मानते है। अतः आचार्य अभिनवगुप्त के रस चर्वणा के अभिनव सौंदर्यशास्त्र के लालित्य उन्मीलन को लेकर प्रस्तुत अदना सा आलेख वस्तुतः जाज्वल्यमान सूरज को दीपक दिखाना ही है क्योंकि इनकी अदबी दार्शनिकता तथा तब्सरा के फलसफा को ग्लोबल नजरिए से परखने की जरूरत है।

□□□

व्याकरणिक कोटियों का अभिनवकृत दार्शनिक उपयोग

डॉ. बलराम शुक्ल

सूत्राम्भसं पदावर्त पारायणसातलम्। धातूणादिगणग्राहं ध्यानग्रहबृहत्प्लवम्।।
धीरैरालोकितप्रान्तं अमेधोभिरसूयितम्। सदोपभुक्तं सर्वाभिरन्यविद्याकरेणुभि।।
नापारयित्वा दुर्गाधममुं व्याकरणार्णवम्। शब्दरत्नं स्वयंगम्यम् अलं कर्तुमयं जनम्।।[1]

भारतीय ज्ञान परंपरा में असंख्य विद्वानों कीशृंखला के मध्य अनेक महान् विद्वान प्रकाश स्तंभ की भाँति विद्यमान हैं जिनकी आभा, सहस्राब्दियों का समय बीत जाने के बाद भी, उनके स्थानों में आमूलचल सामाजिक परिवर्तन हो जाने के बावजूद, मंद नहीं पड़ सकी है। महर्षि वेदव्यास, आचार्य पाणिनि तथा भगवान् शंकराचार्य के साथ महामाहेश्वर अभिनवगुप्तपादाचार्य ऐसे ही महापुरुषों में से एक हैं। आचार्य पाणिनि सीमांत प्रांत के शलातुर ग्राम (संभवतः आधुनिक लाहौर) के निवासी थे। उन्होंने अष्टाध्यायी की रचना की जो भारत की सांस्कृतिक एकता की मूल भाषा संस्कृत को ठीक-ठीक समझने में हजारों साल तक उपयुक्त होती रही है। लाहौर अब हमारे पास नहीं है लेकिन अष्टाध्यायी अब भी हमें अपनी सांस्कृतिक निधि को सुरक्षित करने में निरंतर सहयोग कर रही है। अभिनवगुप्त आज से लगभग एक हजार वर्ष पहले कश्मीर में वर्तमान थे। उन्होंने अद्वैत दर्शन के जिस कश्मीर संस्करण का व्याख्यान किया वह भारत की दार्शनिक स्मृति में अमिट है। उनके द्वारा काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के बारे में दी गई व्याख्याएँ आज तक अंतिम मानी जा रही है। आज शारदादेश कश्मीर का पर्याय नहीं है। भारत की अखंड सांस्कृतिक भावना भी वहाँ धूमिल

हो रही है, लेकिन वहाँ से उपजे अभिनवगुप्त और उनके सिद्धांत अब भी अक्षुण्ण हैं। यह दुस्संयोग ही है कि प्रस्तुत पत्र में चर्चा के विषय पाणिनि तथा अभिनव दोनों ही अपनी ज़मीन पर अपदस्थ हो चुके हैं। वहाँ उनको समझने की बात छोड़ दें, उनका नामलेवा कोई नहीं रहा। लेकिन फिर भी, राजनैतिक कुचक्र सरस्वतीपुत्रों के माहात्म्य को ऐकांतिक रूप से समाप्त नहीं कर पाए हैं।

अभिनवगुप्त शैवदर्शन, तंत्र तथा काव्यशास्त्र की परंपरा के अपूर्व व्याख्याकार हैं। वे सुदीर्घ कालावधि में फैली चिंतन परंपराओं को समग्रता में देखकर समेकित रूप में व्याख्या करते हैं, इसलिए उनके दर्शन एवं तंत्र से संबद्ध ग्रंथ, टीकाग्रंथ व स्तोत्र तथा फुटकर काव्य आदि मिलाकर परंपरा की व्याख्या का महावाक्य बनता है (त्रिपाठी 2016:4)। अभिनव का जो भी अभिनवत्व है, वह उनकी व्याख्या का ही है। उन्होंने व्याख्याओं के द्वारा परंपरा को जो योगदान दिया, वह मूल ग्रंथों के प्रणयन से कम नहीं है। उन्होंने अपनी व्याख्याओं से कश्मीर के त्रिक दर्शन को एक समन्वित रूप दिया, नाट्यशास्त्र की महावाक्यात्मक कृति के रूप में सप्रमाण विवेचना प्रस्तुत की (त्रिपाठी 2016:7), ध्वनि तत्व को पुनरुज्जीवित किया तथा वैष्णव आधारकारिकाओं का शैवीकृत रूप परमार्थसार भी प्रस्तुत किया।[2]

अपने विशिष्ट व्याख्यान प्रकार में अभिनव ने व्याकरण शास्त्र का अद्भुत तथा अपूर्व उपयोग किया है। व्याकरणशास्त्र सामान्यत: सभी शास्त्रों का उपकारक है इसलिए कोई भी व्याख्या व्याकरण की सहायता के बिना असंभव है। लेकिन अभिनव के व्याख्या ग्रंथों में हम व्याकरण शास्त्र की कोटियों का असाधारण उपयोग पाते हैं। प्रकृति तथा प्रत्यय के ज्ञान से शब्द के बाह्य स्वरूप की वास्तविक पहचान हो पाती है तथा इसी कारण किसी भी ग्रंथ की गुत्थियाँ सुलझाने के लिए टीकाकार व्याकरण की सहायता लेते हैं। लेकिन व्याकरणशास्त्र का उपयोग अभिनव व्याख्येय ग्रंथ के केवल बाह्य शब्द स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए नहीं करते बल्कि इसका प्रयोग वह अपनी दार्शनिक मान्यताओं के प्रतिपादन तथा स्पष्टीकरण में भी करते हैं। व्याकरण शास्त्र के इस विशिष्ट उपयोग से अभिनव का संपूर्ण व्याकरण तंत्र पर असाधारण अधिकार द्योतित होता है।

अभिनव *व्युत्पत्यै सर्वशिष्यता*[3] *तथा बहुभिर्बहु बोद्धव्यं*[4] के मूर्तिमान् उदाहरण थे। ज्ञान के प्रति अपनी प्रगाढ़ पिपासा के चलते अभिनव ने प्राय: सभी शास्त्रों का अध्ययन उस समय के विद्वानों के पास जाकर किया था। परंतु व्याकरण शास्त्र तो उनके घर की विद्या थी। व्याकरण के उनके गुरु स्वयं उनके पिता नृसिंह गुप्त (चखुल अथवा चुखुलक) थे जिनसे उन्होंने महाभारत का अध्ययन किया था। कश्मीर में पाणिनीय व्याकरण, विशेषत: महाभाष्य के अध्ययन की समृद्ध परंपरा रही है। व्याख्यान के क्रम में अभिनव में नूतन आयामों को प्रकट करने की जो क्षमता दिखाई पड़ती है, उसमें महाभाष्यकार पतंजलि का बहुत बड़ा योगदान देखा जा सकता है। उनके नाम के विषय में परंपरा में जो व्याख्याएँ मिलती हैं उसमें एक के अनुसार उन्हें महाभाष्यकार पतंजलि का अवतार बताया जाता है। अभिनवगुप्तपाद शब्द में गुप्तपाद का अर्थ सर्प अथवा शेषनाग है। इस प्रकार इनके नाम का अर्थ होगा - शेषनाग अर्थात् पतंजलि के नवीन अवतार।[5] इस व्याख्या से पता चलता है कि उस समय उनकी प्रसिद्धि एक प्रख्यात वैयाकरण के रूप में थी। जब हम उनके ग्रंथों का अध्ययन करते हैं तो पदे पदे उनके व्याकरण ज्ञान तथा उसके अपूर्व उपयोग से चकित रह जाते हैं। आगे के पृष्ठों में हम उनके व्याकरण ज्ञान के तत्वशास्त्रीय उपयोग के कुछ प्रमुख बिंदुओं की ओर ध्यान आकृष्ट करेंगे।

अभिनवगुप्त व्याकरण के प्रक्रिया तथा दर्शन दोनों पक्षों से सुपरिचित थे तथा उन्होंने दोनों का अपनी व्याख्याओं में यथास्थान उपयोग किया। व्याख्येय ग्रंथों के संप्रत्ययात्मक बीजशब्दों के दार्शनिक तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए वे उन शब्दों की व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत करते हैं। सामान्यत:, वे व्याकरण शास्त्र की प्रविधियों का उपयोग करते हुए एक शब्द की अनेकानेक व्युत्पत्तियाँ देते हैं। प्रत्येक व्युत्पत्ति से उनका तात्पर्य उस संप्रत्यय विशेष के किसी नए आयाम को स्पष्ट करना होता है।

परात्रिंशिका (या परात्रीशिका) ग्रंथ की अपनी व्याख्या के प्रारंभ में ही वे *देवी* शब्द की व्युत्पत्ति के लिए पाणिनि के धातुपाठ में स्थित *दिव्*[6] धातु के सभी अर्थों को अपने दर्शन के आयाम में घटा कर प्रदर्शित करते हैं। शिवाद्वैत दर्शन के अनुसार शिव प्रकाशात्मक तथा उनकी शक्ति विमर्शात्मिका

है। संपूर्ण सृष्टि इस प्रकाशात्मा का विमर्श ही है। उपर्युक्त प्रसंग में अभिनव के अनुसार जब परा वाणि पश्यन्ती तथा मध्यमा के स्वरूप में आकर जब पर संविद् के रूप में स्वयं अपना ही विमर्श करती है तो वह देवी शब्द से कही जाती है[7]–

तत्पश्यन्तीमध्यमात्मिका स्वात्मानमेव वस्तुतः परसंविदात्मकं यदा विमृशति परैव च संविद् देवीत्युच्यते[7]।

उसे देवी इस कारण से कहा गया है कि वह देव अर्थात् भैरवनाथ[8] की शक्ति है (भैरवनाथस्यैव देवत्वमिष्यते तच्छक्तेरेव भगवत्या देवीरूपता)। भैरव अर्थात् सबको व्याप्त करने वाला समष्टि चैतन्य देव इसलिए हैं क्योंकि –

1. वह पश्यंती आदि शक्तियों के माध्यम से बाह्य जगत् की सृष्टि तक अपने विमर्श रूपी आनंद में क्रीड़ा करते हैं। (क्रीड़ा)
2. विश्व को अतिक्रांत करने के कारण सबसे उत्कृष्ट स्थिति वाले भगवान् भैरव उसी अवस्था में स्थित रहने की इच्छा से युक्त हैं। (विजिगीषा)
3. संसार में, जो असंख्य प्रकार के ज्ञान, स्मृति, संशय तथा निश्चय आदि व्यवहार हैं, वह सब वस्तुतः वही करते हैं। (व्यवहार)
4. बाह्यरूप में भासित जगत् में जगत् के स्वरूप में भासित होने के कारण (द्युति)
5. उनके प्रकाश के वश में आए हुए उन्मुख सभी लोगों के द्वारा उसकी स्तुति की जाती है। (स्तुति)
6. अपनी इच्छापूर्वक सभी स्थानों तथा सभी कालों में उनकी गति संभव है। (गति)

इसी प्रकार क्रम दर्शन के एक पारिभाषिक शब्द चक्र को उन्होंने चार धातुओं से निष्पन्न बताया है ताकि दार्शनिक दृष्टि से इस शब्द के प्रकार्यों को स्पष्ट किया जा सके –

1. यह चमकता है। (कसि विकासे)
2. यह आत्मिक तृप्ति देता है। (चक तृप्तौ)
3. यह बंधन को काटता है (कृती छेदने)
4. इनमें क्रियाशक्ति है। (डुकृञ् करणे)

वे यह भी दिखाते हैं कि अर्थ के निम्नोक्त आयाम क्रम संप्रदाय में किस प्रकार सुसंगत हैं और शरीर में विभिन्न चक्रों पर एकाग्रता के द्वारा इनका साक्षात्कार भी किया जा सकता है। अभिनव अपने अनुभव द्वारा उपार्जित रहस्यों का समर्थन पारंपरिक शास्त्रीय ज्ञान द्वारा करते हैं। इसलिए उनका शास्त्रीयज्ञान पांडित्य प्रदर्शन मात्र नहीं रह जाता। देशपांडे (1995: 6) का उत्प्रेक्षण है–

उन (अभिनव) के मत में, आध्यात्मिक ज्ञान की पूर्णता क्रमशः तीन अवस्थाओं में प्राप्त होती है – गुरुतः, शास्त्रतः, स्वतः, अर्थात् गुरु से, शास्त्र की युक्ति से और स्वानुभव से। अपने निजी अनुभवों के कारण ही अभिनवगुप्त को शिवाद्वय दर्शन का श्रेष्ठतम आचार्य माना जाता है।[9]

अभिनव कुल संप्रदाय के विविध पक्षों को स्पष्ट करने के लिए कुल शब्द की व्याकरणात्मक व्युत्पत्ति का सहारा लेते हैं। वे इस शब्द को 'कुल संस्त्याने बन्धुषु च' धातु से निष्पन्न करते हैं – कोलति इति कुलम्। इसका अर्थ वे करते हैं – स्थूल-सूक्ष्मपर प्राण-इंद्रिय-भूत-आदि। क्योंकि वे समूह में रहते हैं तथा उनका कार्यकारण संबंध होता है।[10]

इसी प्रकार कुल संप्रदाय एवं प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रसंग देवी के लिए izÞr *महाभागा* के विविध अर्थों को स्पष्ट करने के लिए वे इनके चार अलग-अलग विग्रह देते हैं[11] तथा इन विग्रहों द्वारा इस शब्द को त्रिक दर्शन की अवधारणा में सम्मत पराभट्टारिका शक्ति के स्वरूप वर्णन में उपयुक्त करते हैं–

महान् भागो यस्याः

महान् (शिवः) भागो यस्याः

महान् (बुद्ध्यादिः) भागो यस्याः

महान्–सर्वतोऽखण्डितपरिपूर्णनिरर्गलनिरपेक्षस्वातन्त्र्यजगदानन्दमयस्य आ-ईषत् भागाः-सुखांशलक्षणा यतः।

संस्कृत के भी व्याख्याकार सामान्यतः व्याकरणात्मक व्युत्पत्तियों का उपयोग अपने-अपने शास्त्रीय सिद्धांतों को स्पष्ट करने के लिए करते रहे हैं लेकिन अभिनव यहीं तक सीमित नहीं हैं। वे भाषिक प्रयोगों को दार्शनिक तत्वमीमांसा की व्याख्या के लिए कुंजी के रूप में प्रयोग करते हैं क्योंकि उनके अनुसार सारे भाषिक प्रयोग इन तत्वों के क्रम में ही विकसित हुए हैं –

न तैर्विना भवेच्छब्दो नार्थो नापि चितेर्गतिः।। (परात्रिंशिका पृ.80)

(जड़-शक्ति-शिव के त्रिक के बिना शब्द, अर्थ अथवा चेतना की गति संभव नहीं है)।

परात्रिंशिका के प्रारंभ में ही देवी शब्द की निरुक्ति प्रदर्शित करने के बाद अभिनव प्रश्न उठाते हैं कि देवी के साथ समानाधिकरण्य में *उवाच* क्रिया कैसे संगत हो सकती है?[12] त्रिक दर्शन में देवी (शक्ति) चिदात्मक शिव के साथ एकाकार हैं। वह सभी वस्तुओं के हृदय में रहती हैं। वह न केवल प्रत्येक सत्ता में प्रत्यक्षतः अनुभव योग्य हैं अपितु प्रत्येक मानवीय अनुभव की आधार भी हैं। उनके लिए परोक्ष, अनद्यतन[13] भूतकाल के अर्थ में प्रयुक्त *उवाच* क्रिया कैसे लग सकती है? (काल्पनिकं च अनद्यतनत्वम् अकाल्पनिके संविद्वपुषि कथम्)। उवाच का अर्थ यहाँ वस्तुतः पप्रच्छ (पूछा) है, इसलिए यह प्रश्न भी उठता है कि ज्ञान तथा चैतन्य की संपूर्णता का प्रतिनिधित्व करने वाली देवी को पूछने की आवश्यकता कैसे पड़ सकती है। पूछना एक ऐसी क्रिया है जो ज्ञान की अल्पता के कारण उद्भूत होती है, जो देवी में संभव नहीं है। अनेक शैव दार्शनिकों ने विभिन्न ग्रंथों में इस विचित्र प्रश्न का उत्तर देने के प्रयत्न किए हैं, लेकिन अभिनवगुप्त का समाधान अधिक सूक्ष्म और व्याकरणिकता से युक्त है।

उनके अनुसार देव्युवाच में *उवाच* पद प्रथम पुरुष का नहीं अपितु उत्तम पुरुष का है। इसका अर्थ है - मैं, जो कि देवी हूँ, उसने पूछा। लेकिन प्रश्न की क्रिया में कर्ता इस तरह से शामिल रहता है कि वह क्रिया उसके लिए परोक्ष नहीं हो सकती, फिर उसके लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग सुसंगत नहीं हो सकता। अभिनव के पास इसका व्याकरणिक उपाय है। कात्यायन का एक वार्तिक है जिसके अनुसार लिट् लकार उत्तम पुरुष का प्रयोग वक्ता अपने शयन तथा नशे की स्थिति का वर्णन करते हुए कर सकता है।[14] पतंजलि इसमें जोड़ते हैं कि जागृत अवस्था में भी यदि व्यक्ति का मन उस जगह अवस्थित नहीं है तो वहाँ भी लिट् लकार का उत्तम पुरुष में प्रयोग हो सकता है। अभिनव कहते हैं कि *देवी उवाच* में देवी का तात्पर्य है पश्यंती तथा मध्यमा। वे अपने आप के बारे में विमर्श करती है - परा वाक् स्वरूपिणी मैंने ही इस प्रकार कहा था। पश्यंती तथा मध्यमा की स्थिति वहाँ है जहाँ मायिक जगत् की उत्पत्ति प्रारंभ हो चुकी है। उस धरातल पर स्थित होकर जब वह परा का परामर्श करती है तो परा को

भूत (सामान्य) की तरह मानती है। केवल भेदावभास के द्वारा उज्जीवित होने वाले आंतरिक तथा बाह्य इंद्रियों के मार्ग से परे है - परा, इसलिए उसे वे परोक्ष की तरह मानती है। अद्यतन की धारणा एक काल्पनिक धारणा है अतः वह अकाल्पनिक परा के विषय में संगत नहीं है, इस कारण वह अनद्यतन भी है। इस प्रकार लिट् लकार की तीनों शर्तों के पूरे हो जाने के कारण यहाँ लिट् लकार उत्तम पुरुष एकवचन का प्रयोग किया गया है। इस प्रसंग में उत्तम पुरुष इसलिए संगत है क्योंकि परा की अवस्था में ज्ञेय वस्तु का नितांत अभाव रहता है इसलिए वह वक्ता के लिए परोक्ष है।[15] लिट् लकार के ये तीन अभिलक्षण इस प्रसंग में वस्तुतः धात्वर्थ से संबद्ध न होकर इसके बहु-आयामी तथा समकेंद्रित कर्ता से संबंधित हैं। इस प्रकार व्याकरण के नियम विशेष का आधार लेकर अभिनव ने यहाँ त्रिक दर्शन की एक बड़ी गुत्थी ही नहीं सुलझाई, बल्कि इस दर्शन में वास्तविकता के विभिन्न स्तरों तथा उनके पारस्परिक संबंधों की भी अच्छी तरह से व्याख्या कर दी।

अभिनव ने भाषा के वैखरी रूप के द्वारा संबद्ध हो सकने वाले प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष को त्रिक दर्शन के तीन तत्वों-नर, शक्ति तथा शिव का वाचक माना है। उनके अनुसार जो केवल जड़ प्रकाश्य है, जिसे इस दर्शन में नर या अणु भी कहते हैं, वह प्रथम पुरुष का विषय है। उदाहरण के लिए - घटः तिष्ठति (घड़ा पड़ा है।) अभिनव इसे अपरा शक्ति का नाम देते हैं।[17] जो वस्तु इदंतया (यह है इस रूप में) भासित होते हुए भी संबोधन के योग्य हो, वह मध्यम पुरुष का विषय होता है। उस वस्तु का इंदभाव, संबोधित करने वाले के अहं भाव से आच्छादित हो जाता है। उदाहरण के लिए त्वं तिष्ठसि (तुम स्थित हो)। अभिनव इसे शक्ति का परापर स्वरूप कहते हैं। अहं तिष्ठामि (मैं रुकता हूँ।) इत्यादि प्रयोगों में जो स्वतंत्रता का विमर्श होता है वह शिव की परा शक्ति का विमर्श है जो वस्तुतः शिव से भिन्न नहीं है। शिव सबसे उत्कृष्ट हैं। इसी कारण इसका वाचन करने वाले भाषिक पुरुष को उत्तम पुरुष कहते हैं। अभिनव इस प्रसंग में रोचक रीति से भगवद्गीता का एक श्लोक उद्धृत करते हैं तथा व्याकरण और दर्शन के उत्तम पुरुष की एकता सिद्ध कर देते हैं।[18]

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। (भगवद्गीता 15.18)

अभिनव कहते हैं कि स्वयं श्रीकृष्ण ने अस्मद् (अहम्) के समानाधिकरण वाले अस्मि का प्रयोग करके अपने को क्षर तथा अक्षर दोनों से उत्तम बताया है, इसलिए यहाँ स्पष्ट है कि उत्तम पुरुष का वाच्य उत्तम शिव ही हैं। आगे अभिनवगुप्त युष्मद् तथा अस्मद के भाषिक प्रयोग की विशिष्टताओं का दार्शनिक उपयोग करते हैं, अथवा यह कहें कि वे भाषिक प्रयोगों की उत्पत्ति दार्शनिक रहस्यों को समझा कर करते हैं। वे बताते हैं कि वैयाकरणों के निकाय में प्रसिद्ध 'अलिङ्गे युष्मदस्मदी (अर्थात् युष्मद् तथा अस्मद् में लिंग नहीं होते)' का कारण क्या है?[19]

अनुत्तर तत्व त्रिक दर्शन में भैरववाची है जिससे परे कोई नहीं है। परात्रिंशिका में अभिनव ने इस शब्द की 16 प्रकार से व्याख्या की है।[20] अंतिम व्याख्या में उन्होंने व्याकरण शास्त्र की सूक्ष्मताओं का सहारा लेकर समझाने का प्रयत्न किया है कि तरप् प्रत्यय का प्रयोग होने पर भी यह शब्द सर्वोत्कृष्ट का वाची कैसे बनता है।[21]

अभिनव का दर्शन शिवाद्वैत है। शिव तथा शक्ति परस्पर भिन्न नहीं है[22] तथा उनसे सृष्ट जगत् भी उनसे वस्तुत: भिन्न नहीं है। एक से ही अनेक का आभास हुआ है - एकं वस्तु द्विधा भूतं द्विधा भूतमनेकधा।[23] इसलिए इस दर्शन में सिद्धांत है - सर्वं हि सर्वात्मकम् (सभी वस्तुएँ सभी वस्तुओं की स्वरूप हैं)। अभिनवगुप्त इस सिद्धांत का उपयोग भाषिक प्रयोगों में होने वाले प्रथम-मध्यम-उत्तम पुरुषों के पारस्परिक व्यत्यय को समझाने में करते हैं।[24] हम देखते हैं कि भाषा में जहाँ प्रथम पुरुष का प्रयोग करना होता है, वहाँ मध्यम या उत्तम पुरुष का प्रयोग कर दिया जाता है, तथा इसी तरह अन्यत्र भी होता है। अभिनव कहते हैं यह तो इष्टापत्ति है। इसी से तो प्रकट होता है कि सभी वस्तुएँ सर्वात्मक हैं और एक दूसरे का स्वरूप धारण कर लेती हैं।

1. नर-शक्ति-शिव के त्रिक में तात्विक भेद नहीं है इसीलिए तो प्रथम पुरुष के द्वारा उक्त होने वाले नर (जड़) के लिए हम मध्यम तथा उत्तम पुरुष का प्रयोग भी देख पाते हैं - जैसे शृणुत ग्रावाण:[25] (ऐ पत्थरों, सुनो) या मेरु: शिखरिणाम् अहम्[26] (पर्वतों के बीच मैं मेरुपर्वत हूँ)। इसके साथ ही भाषा में अहं चैत्रो ब्रवीमि (मैं चैत्र बोल रहा हूँ) यह प्रतीतिपूर्वक प्रयोग भी होता है जिसका तात्पर्य है कि अस्मत् का अर्थ शिव जड़ वस्तु के साथ तादात्म्य प्राप्त करता है।

2. युष्मद् की प्रतीति का विषय शक्ति तत्व भी अनेक बार जड़ात्मकता को प्राप्त करता है। अभिनव का उदाहरण है त्वं गतभयधैर्यशक्ति: (तुम भय तथा धैर्य की शक्ति से रहित हो)[27]। इसके अतिरिक्त सम्मानसूचक भवान् शब्द अथवा गुरव:, पादा: इन विशेष शब्दों से द्योतित तो युष्मद् द्वारा बोधित अर्थ (शक्ति) होता है परंतु इनका प्रयोग प्रथम पुरुष में होता है।

3. भाषिक प्रयोगों में जब हम अपने किसी प्रिय के लिए कहते हैं-प्रिये मैं तुम ही हूँ, तो उसे संबोधित करके उसके शरीर से तादात्म्य स्थापित करने के कारण शिव तत्व (अस्मदर्थ) ऐसा लगता है कि अपने स्वरूप को छोड़कर जड़ (इदमर्थ) तथा शक्ति (युष्मदर्थ) की कोटि तक उतर आता है। इसके अलावा, मै कौन हूँ, यह मैं हूँ, अरे वाह मैं, मुझे धिक्कार है, इत्यादि भाषिक अभिव्यक्तियों में भी अस्मदर्थ (शिव) अपने अप्रतिहत स्वातंत्र्य को गौण बनाकर इदंतया प्रतीत होता है। *हे मैं* इस अभिव्यक्ति में हम देख सकते हैं कि शिव परापर शाक्त (संबोधनात्मक युष्मदर्थ) का स्पर्श कर रहा है।

संस्कृत अथवा किसी भी भाषा के प्रयोग में हम देखते हैं कि प्रथम तथा मध्यम पुरुष एक साथ आएँ तो मध्यम पुरुष; मध्यम तथा उत्तम एक साथ आएँ तो उत्तम पुरुष अवशिष्ट रहता है तथा उसी को द्योतित करने वाली क्रिया का प्रयोग होता है। पाणिनि ने भी एक विशेष प्रविधि से इसकी व्यवस्था दी है। अभिनव इस भाषिक परिघटना का दार्शनिक रहस्य बताते हैं।

एकात्मक होने के कारण परमतत्व प्रतिपक्षविहीन होता है। जब वह शक्ति स्वरूप में होता है तब शिव ही उसका प्रतियोगी होता है। एक ही शिवतत्व जड़ रूप में आकर अनेक रूपों में भासित होने लगता है। इसीलिए तो घट:, घटौ तथा घटा: के लिए प्रयुक्त तिष्ठति, तिष्ठत: तथा तिष्ठन्ति क्रियाएँ एक-एक ही प्रयुक्त होती हैं। ये क्रियाएँ एक ही शिव तत्व की क्रिया शक्ति के द्वारा संपादित की जाती है।[28]

जब नर, शक्ति तथा शिव का एक साथ परामर्श होता है तो वे बाद वाले के स्वरूप में विलीन हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि पूर्व पूर्व वालों (जड़ तथा शक्ति) का वास्तविक रूप बाद वाला (शक्ति तथा शिव) ही है। इसलिए, स च त्वं च के साथ तिष्ठथ: (मध्यम पुरुष) क्रिया का प्रयोग होता है तथा स च त्वं च अहं च के साथ तिष्ठामि (उत्तम पुरुष) का प्रयोग होता है। संस्कृत

के वैयाकरणों ने तो इसका अनुशासन किया है, लेकिन पालि, तेलुगु तथा अन्य द्राविड़ भाषाएँ जहाँ व्याकरण नहीं हैं वहाँ भी इसी प्रकार की भाषिक परिघटना देखी जाती है।[29]

उपर्युक्त प्रकार का अपूर्व शास्त्र-समन्वय हमें अभिनव के यहाँ ही देखने को मिलता है। अन्यत्र भी वे काव्यशास्त्र के सिद्धांतों की व्याख्या अपने दार्शनिक चिंतन के प्रकाश में करते हैं वैसे ही दर्शन को भी काव्य के उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने नाटकों से मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति वाले पद्य उद्धृत किए हैं तथा उनका उपयोग दार्शनिक सूक्ष्मताओं को स्पष्ट करने में किया है (देशपांडे 19951:4)। व्याकरण तथा दर्शन को तो उन्होंने परस्पर एक दूसरे के यमल के रूप में ही ग्रहण किया है। तोरेला (1999:132) ने अभिनव की इस विशेषता के संबंध में ठीक ही कहा है। -

"Such a kind of sophisticated operation - to translate grammatical paradigms into Theological ones, and vice versa- is not new to him. He moves with elegance and suppleness between two factually different dimensions, nourishing one through the other thus pointing, through the liberty of his exegeses, to the unpredictability of the paths of supreme consciousness"[30]

भाषा दर्शन में प्रत्यभिज्ञा दार्शनिकों का बहुत बड़ा योगदान है। वे भाषा की विभिन्न अवस्थाओं परा-पश्यंती-मध्यमा तथा वैखरी को परमशिव के जागतिक विमर्श की अवस्थाओं के साथ समांतर तथा पर्याय के रूप में ग्रहण करते हैं। अत: उनके मत में परस्पर द्वारा एक दूसरे की व्याख्या स्वभावत: संभव है। अभिनव भाषिक व्यवहार को आंतरिक वस्तुसत्ता की प्रतीति का सच्चा अनुसरणकर्ता मानते हैं तथा इसी कारण वे वस्तु तत्व को परिभाषित करने के लिए भाषिक व्यवहारों तथा उसके व्युत्पादक-व्याकरण शास्त्र का प्रचुर उपयोग करते हैं - वचनक्रमश्च हार्दीमेव प्रतीतिं मूलतोऽनुसरन् तत्प्रतीतिरसरूपतया प्रतीतेरपि एवंरूपत्वमवगमयेत्। (परात्रिंशिका पृ. 80)।

संदर्भ ग्रंथ:

1. व्याकरणशास्त्र अगाध समुद्र की तरह है जिसे पार किए बिना व्यक्ति शब्द रूपी रत्नों को प्राप्त नहीं कर सकता। इस व्याकरण रूपी समुद्र में सूत्र ही जल है, पद ही भँवर है, पारायण ही इसका धरातल है, धातुपाठ तथा उणादिपाठ

4342 CHD/16— 9B

आदि मगरमच्छ की तरह हैं, अवधान ही इसे पार करने के लिए बड़ी नाव है, समस्त शास्त्रविद्यारूपी हथिनियों के द्वारा इसका निरंतर सेवन किया जाता है। धैर्यशाली विद्वान् इसके दूसरे किनारे को देख पाते हैं जबकि धारणा शक्ति से रहित मूर्ख व्यक्ति इससे ईर्ष्या करते रह जाते हैं। (काव्यालंकार (भामह)6.1-3)

2. आधारं भगवन्तं शिष्य: पप्रच्छ परमार्थम्।।
   आधारकारिकाभिस्तुं गुरुरभिभाषते स्म तत्सारम्।
   कथ्यत्यभिनवगुप्त: शिशासनदृष्टियोगेन।। (परमार्थसार 2.3)
3. विशिष्ट ज्ञान के लिए सबकी शिष्यता स्वीकार कर लेनी चाहिए।
4. बहुत लोगों से बृहत् चीज़ों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। (सभारञ्जनशतक-नीलकण्ठ दीक्षित)
5. देशपांडे (1999:2)
6. दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिगतिषु (धातुपाठ दिवादि 1)
7. परात्रिंशिका पृ. 8
8. देशपांडे (1995:120)
9. परात्रिंशिका व्याख्या (पृ. 37-38) तथा तंत्रालोक (2.41) में अभिनवगुप्त ने इन तीनों साधनों के विकल्प को भी बताया है-

एकवारं प्रमाणेन शास्त्राद् वा गुरुवाक्यत:। ज्ञाते शिवत्वे सर्वस्थे प्रतिपत्या दृढ़ात्मना।।
करणेन नास्ति कृत्यं कदापि भावनयापि वा।।

तथा, तंत्रालोक -

गरोर्वाक्याद्युक्तिप्रचयरचनोन्मार्जनवशात् समाश्वासाच्छास्त्रं प्रति समुदिताद्वापि कथितात्।
विलीने शङ्काभ्रे हृदयगगनोद्भासिमहस: प्रभो: सूर्येव स्पृशत चरणान् ध्वान्तजयिन:।।

10. कुलं स्थूलसूक्ष्मपरप्राणेन्द्रियभूतादि समूहात्मतया कार्यकारणभावाच्च। (परात्रिंशिका पृ. 32)
11. परात्रिंशिका पृ. 66-69
12. इस समस्या का सूक्ष्म विवेचन राफ़ेल तोरेला (1999) ने अपने पत्र "Devi Uvaca", or Theology of the Perfect Tense में कुशलतापूर्वक किया है।

13. परोक्ष अर्थात् वह क्रिया जो वक्ता ने न देखी हो। अनद्यतन वह क्रिया जो आज न हुई हो।

14. सुप्तमत्तयोरुत्तम:। महाभाष्य 2

15. एवं भगवती पश्यन्ती मध्यमा च स्वात्मानमेव यदा विमृशति अहमेव परावाग्देवतामयी एवमवोचमिति तदा तेन रूपेणोल्लसन्मायारम्भतया स्वात्मापेक्षतया तन्मायीयभेदानुसारात्तामेव पराभुवं स्वात्ममयीं भूतत्वेनाभिमन्वाना भेदावभासप्राणनान्तर्बहिष्करणपथव्यतिवर्तिनीयत्वात्परोक्षतया.....इत्यनवस्थितं काल्पनिकं चाद्यतनत्वमकाल्पनिके संविद्वपुषि कथमिति न्यायादुभूतानद्यतनपरोक्षार्थ-परिपूणात्परोक्षोत्तमपुरुषक्रमेण विमृशेद् अहमेव सा परावाग्देवीरूपैव सर्ववाच्यवाचकाविभक्ततयैवमुवाचेति तात्पर्यम्। सुप्तोऽहं किल विललाप इति ह्येवमेवोपपत्ति:। तथाहि - तामतीतामवस्थां न स्मरति प्रागवेद्यत्वादिदानीं पुरुषान्तरकथितमाहात्म्याददतिविलापगानादिक्रियाजनितगद्गदिकादिदेहबिक्रियावेशेन वा तदवस्थां चमत्कारात्प्रतिपद्यते नह्यप्रतिपत्तिमात्रमेवैतन्मत्त: सुप्तो वाहं किल विललाप इति मदस्वप्रमूर्छादिषु हि वेद्यविशेषांनवगमात्परोक्षत्वं परावस्थायां तु वेद्यविशेषयांस्भाव एव - इति केवलमत्र वेदकवेद्यतादात्मयप्रतिपत्तया तुर्यरूपत्वान्मदादिषु तु मोहावेशप्राधान्यात् - इतीयान् विशेष: परोक्षता तु समानैव। (परात्रिंशिका पृ. 8-9)

16. "The three features of the perfect do not concern action but its stratified or concentric agent" (Torrella 1999: 134)

17. मुख्यतया तु विच्छन्नैव इदन्ता प्रतीयते यत्र भगवत्या अपराया उदय:। (परात्रिंशिका पृ. 78)

18. नरशक्तिशिवात्मकं हीदं सर्वं त्रिकरूपमेव। तत्र यत् केवलं स्वात्मन्यवस्थितं तत् केवलं जड़रूपयोगि मुख्यतया नरात्मकं घटस्तिष्ठतीतिवदेष एव प्रथमपुरुषविषय: शेष:। यतु पुनरिदमित्यपि भासमानं यदामन्त्र्यमाणतया आमन्त्रकाहम्भावसमाच्छादिततदभिन्नेदम्भावं युष्मच्छब्दव्यपदेश्यं तच्छाक्तं रूपं त्वं तिष्ठसीत्यत्र ह्येष एव युष्मच्छब्दार्थ आमन्त्रणतत्वं च। तथाहि यथाहं तिष्ठामि तथैवायमपीति। तस्याप्यस्मद्रुपावच्छिन्नाहम्भावचमत्कारस्वातन्त्र्यमविच्छिन्नाह-ञ्चमत्कारेणैवाभिमन्वान आमन्त्रयते यथार्थेन मध्यमपुरुषेण व्यपदिशति सेयं हि भगवती परापरा। सर्वथा पुनरविच्छिन्नचमत्कारनिरपेक्षस्वातन्त्र्याहंविमर्शेऽहं तिष्ठामीति पराभट्टारिकोदयो यत्रोत्तमत्वं पुरुषस्य। (परात्रिंशिका 73-75)

19. परात्रिंशिका पृ. 76

20. तद् व्याख्यातमिदमनुत्तरं षोडशाधा (परात्रिंशिका पृ. 31)

21. वही पृ. 29-30

22. शक्तिशक्तिमतोरभेदात्।

23. एक वस्तु (शिव) दो (शिव-शक्ति) में विभाजित हुआ तथा वही बहुतों (आभासरूप संसार) में प्रकट हुआ। (परात्रिंशिका पृ. 71)

24. सर्वं हि सर्वात्मकमिति नरात्मानो जडा अपि त्यक्ततत्पूर्वरूपा: शाक्तशैवरूपभाजो भवन्ति - शृणुत ग्रावाण: मेरु: शिखरिणामहं भवाम्यहं चैत्रो ब्रवीमीत्यपि प्रतीते:। शाक्तमपि युष्मदर्थरूपमपि नरात्मकतां भजत एव शाक्तरूपमुज्झित्वा त्वं गतभयधैर्यशक्तिरित्यनामन्त्रणयोगेनापि प्रतिपत्ते:। भवानित्यनेन पादा गुरव इत्यादिप्रत्ययविशेषैश्चापरावस्थोचितनरात्मकप्रथमपुरुषविषयतयापि प्रतीतिसद्भावात्। त्यक्तशाक्तरूपस्यापि चाहंरूपशिवात्मकत्वमपि स्याद्वयस्ये दयिते त्वमेवाहं भवामीति प्रत्ययात्। शिवस्वरूपमपि चोज्झितचिद्रूपमिव नरशक्तयात्मकं वपुराविशत्येव। कोऽमेषोऽहमहो अहं धिगु माम् अहो मह्यमित्यादौ ह्युहमिति गुणीकृत्याविच्छिन्नं स्वातन्त्र्यं मुख्यतया तु विच्छिन्नैवेदन्ता प्रतीयते यत्र भगवत्या अपराया: उदय:। हे अहमित्यादौ परापरशाक्तस्पन्दस्पर्श एव शिवस्य। (परात्रिंशिका पृ. 77-78)

25. महाभाष्य 3.1.1

26. भगवद्गीता 10.23

27. इस उदाहरण में चूँकि संबोधन अभिप्रेत नहीं है इसलिए अभिनव इस युष्मद् (त्वम्-तुम) को जड़ भाव में आपन्न मान रहे हैं।

28. एकात्मकत्वे ह्यप्रतियोगित्वात् शिवताप्रतियोगिसम्भवे शाक्तत्वमनेकतायां भेद एव नराम्तभाव एकस्यैव घटो घटौ घटपटपाषाणा इत्यपि हि तिष्ठति तिष्टतस्तिष्ठन्तीति चैकेनैव क्रियाशक्तिम्फुरितमेवैतद् (परात्रिंशिका 79)

29. अत एव नरशक्तिशिवात्मनां युगपदेकत्र परामर्श उत्तरोत्तरस्वरूपानुप्रवेश एव - तस्यैव वस्तुतस्तत्परमार्थरूपत्वात्स च त्वं च तिष्ठथ: स च त्वं चाहं च तिष्ठाम इति प्रतीतिक्रम एवाकृतकसंस्कारसार: शाब्दिकैर्लक्षणैरनुगम्यते तथा च निजभाषापदेष्वपि संस्कारस्य यत्र नामापि नावशिष्यते बौद्धान्ध्रद्रविडादिषु तत्राप्ययमेव वाचनिक: क्रमो वचनक्रमश्च हार्दीमेव प्रतीतिं मूलतोऽनुसरन् तत्प्रतीतिरसरूपतया प्रतीतेरप्येवंरूपत्वमवगमयेत्। (परात्रिंशिका पृ. 79-80)

30. व्याकरणिक कोटियों को दार्शनिक कोटियों में और दार्शनिक कोटियों को व्याकरणिक कोटियों में अनूदित कर देने का विशिष्ट व्यापार अभिनव के लिए नया नहीं है। वे इन दो, सूचनात्मक दृष्टि से भिन्न, आयामों में से सुंदर सहज रीति से एक से दूसरे का पोषण करते हुए चलते हैं। अनेकश: व्याख्याओं की छूट लेते हुए अभिनव परम चैतन्य के मार्ग की पूर्वानुमान-भिन्नता को प्रकट करते हैं।

मूल ग्रंथ:

परात्रिंशिका अभिनवगुप्तकृततत्त्वविवेकटीकोपेता. (सं.) मुकुंदरामशास्त्री, कश्मीर सिरीज ऑफ् टेक्स्ट एंड स्टडीज-18, 1918, (पुन:.) अरोमा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1991.

श्रीमद्भगवद्गीता अभिनवगुप्ताचार्यव्याख्योपेता. (सं.) वासुदेवलक्ष्मण पणशीकर. (पुन:.) श्रीलालबहादुरशास्त्रीसंस्कृतविद्यापीठम्. नवदेहली-2001

परमार्थसार: अभिनवगुप्तपादानाम्. भाष्यकृत् योगराजाचार्य:. श्रीरणवीरकेंद्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्. जम्मूपुरम्. 1981

Isvarapratyabhijnakarika of Utpaldeva with the Author's Vrtti, Critical edition and annotated translation by Raffele Torella. Motilal Banarasidas Publishers Private Limited, Delhi. 2002.

Paratrishika (trans) Jaidev Singh. Motilal banarasidas- Delhi

अध्ययन:

रस्तोगी, नवजीवन (2013) काश्मीर शिवाद्वयवाद में प्रमाणचिंतन. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद।

देशपांडे, ग. त्र्य. (1995) अभिनवगुप्त (हिंदी अनु.) मिथिलेश चतुर्वेदी. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

Torrella, Raffele (1999) "Devī Uvāca ~~Devi Uvaca~~", or Theology of the Perfect Tense. Journal of Indian Philosophy 27: (Pp)129-138.

त्रिपाठी, राधावल्लभ (2016) अभिनव हैं अभिनव-दसवीं सदी के सौंदर्यशास्त्री का संसार. प्रतिमान. सी एस डी एस (प्रकाश्यमान)।

□□□

अभिनवगुप्त का शब्द-चिंतन

डॉ. आरती दुबे

अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक पर लोचन टीका लिखकर काव्यशास्त्र की कई मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। इसी प्रकार से उनके द्वारा आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र पर अभिनवभारती टीका लिखी गई। इस प्रकार वे काव्यशास्त्र और आगमिक परंपरा के उद्भट विद्वान थे। उन्होंने तमाम प्रकार के शास्त्रीय विमर्शों में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, उन पर प्रकाश डालना इस लेख का प्रमुख उद्देश्य है। इनके कतिपय व्याख्येय शब्द इस प्रकार हैं –

ऊह – यह योगविषयक शब्द है। योग प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा, तर्क और समाधि इन छह अंगों वाला कहा जाता है। ऊह योग का अंतरंग है। उसके द्वारा अध्वा में स्थित होने के कारण, यह साधारण होते हुए भी मुक्ति का प्रचुर उत्कार करता है।[1] जो (साधक) अपने सिद्धांत के अनुकूल तर्क के द्वारा धर्म, ज्ञान और मोक्ष के लिए विचार करता है, वह तत्व को जानता है। दूसरा इसे नहीं जानता। इसीलिए इसी में मुख्य वृत्ति से प्रयास करना चाहिए। इसीलिए कहा गया है – "इस कारण, इस विषय में यत्न की प्रशंसा की जाती है।' अभिनवगुप्त हमें स्पष्ट करते हुए लिखते हैं –

मार्गोऽत्र मोक्षोपाय: स हेय: शास्त्रान्तरोदित:।
विषिणोति निबध्नाति येच्छा नियतिसङ्गतम्।।[2]

सांसिद्धिक – ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जिसमें कोई लोकेषणा न हो। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है –

सुत वित लोक ईषना तीनी
इनकी मति इन कृत न मलीनी